P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

वर्तमान शिक्षा की वास्तविकता

मंजय कुमार
प्राचार्य,
शिक्षा शास्त्र विभाग,
आई. ए. एम. आर. कॉलेज,
पंचली, मेरठ, भारत

सारांश

कोटा और दूसरे शहरों में आत्महत्या की खबरों को हत्या कहना ज्यादा सहीं होगा। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा किसी खबर या घटना पर देश के पुरस्कृत लेखक, बुद्धिजीवियों, कलाकरों ने कभी कोई प्रतिक्रिया न दी, न देंगे और न ही किसी लेखक ने कोई अवार्ड लौटाया। इससे ज्यादा संवेदनशील मुद्दा क्या हो सकता है जब बच्चे कुछ आरोपित सपनों को पूरा न कर पाने की हताशा में मां–बाप, समाज, दोस्तों की टेढ़ी व्यंग्य भरी नजरों से भयभीत अपनी ही जान दे देते है। बरसो से यह हो रहा है। मगर इस साल तो अति ही हो गई है। अभी तक अकेले कोटा शहर में दो दर्जन आत्महत्याओं के मामले रिपोर्ट किए जा चुके है। मान कर चलिए कि इससे कई गुना ज्यादा होंगे। दूसरे शहरों में भी और जिन्हें लोकलाज से छिपाया भी जाता रहता है। आखिर दोष किसका है? बच्चों को तो कतई नहीं। वे तो कच्चे मिट्टी हैं जैसा ढालोंगे, पकाओगे वैसा ही वे बनेंगे। एक अनुमान के अनुसार मेडिकल, इंजीनियरों की कोचिंग ले रहे लगभग बीस प्रतिशत बचे पढ़ाई से हटकर इन व्यसनों की गिरफ्त में आ जाते है। दिन–रात वही गणित, भौतिक, रसायन के फार्मूले रटते–रटते मानसिक रोगी भी कई बच्चें हो चुके है। यहां शिक्षाविद् प्रोफेसर यशपाल की वर्ष 1992 की रिपोर्ट की बातें याद आती हैं। 'जो बच्चें नहीं चुने जा पाते वो पूरी उम्र के लिए कुंठित होते ही हैं, चुने जाने वाले भी इस रटंत पद्धति के चलते बहुत अच्छा नहीं कर पाते। इसका हल पूरी शिक्षा व्यवस्था में ढूँढ़ना होगा और तुरंत।

मुख्य शब्द : महत्वकांक्षाओं, संवेदनशील, शिक्षाविद्, स्वावलम्बी, इंजीनियरिंग, एकाकीपन, आमूलचूल।

प्रस्तावना

आज जिस प्रकार की शिक्षा भारत के छात्रों को दी जा रही है, उससे युवा पीढ़ी में ईमानदारी, अनुशासन, सत्य–निष्ठा, दया, नम्रता, अहिंसा, धैर्य, सहानुभूति व सहनशीलता, जैसे नैतिक मूल्यों का लगातार ह्रास हो रहा है। शिक्षा हर प्रकार के अपेक्षित परिवर्तन तथा सुधार की धुरी है। आज शिक्षा स्वयं इस स्थिति में पहुंच गयी है कि उसमें आमूलचूल परिवर्तन की अपेक्षा हर तरफ से की जा रही है। छात्रों को शिक्षित करने के साथ ही उन्हें संस्कारवान व समायोजन कराने वाला बनाना शिक्षा का प्रथम ध्येय होना चाहिए, लेकिन अब ऐसा नहीं दिखता और इसके दुष्परिणाम कई रूपों में हमारे सामने आ रहे है।

आत्महत्या से पहले छिपाकर छोड़ी गई पर्चियां दिल दहलाने वाली है। 'यदि मम्मी सिलेक्शन नहीं हुआ तो किसी से नजरें नहीं मिला पाऊंगी। मैं चाहती थी कि आप मुझे पर गर्व करें।' एक और पर्ची की इबारत, 'मां मैं बहुत प्रेशर में था'। पापा के पैसे भी बर्बाद हुए। मैं मजबूर हूँ। कोई और देश होता तो पूरा समाज तंत्र सड़कों पर उतर आता। बीस बरस पहले लंदन के नजदीक एक बच्चें की स्कूल में लाश मिली थी तो हफ्तों अखबारों में यह मौत सुर्खियों में रही थी। यहां पसरी चुप्पी बताती है कि हम सब इन आत्महत्याओं के दोषी है, उन्हें उकसाते हैं।

दुनिया के सामने हमारे सारे बड़बोले राजनेता इस बात पर तो इतराते हैं कि दुनिया की सबसे नौजवान आबादी भारत में है लेकिन क्या इन नौजवानों के सपनों को कोई जगह व्यवस्था दे पा रही है? न पढ़ने के लिए पर्याप्त मेडिकल कॉलेज, न अच्छे इंजीनियरिंग या दूसरे शोध संस्थान। आइआइटी जैसे संस्थान कुछ ब्रांड बन गए है, लेकिन चौदह लाख परीक्षा देने वाले और सीट मात्र दस हजार। वह भी पिछले कुछ वर्षो में बढ़ी हैं। फिर शेष कहां जाएंगे? दुनिया की सबसे कठिन मानी जाने वाली परीक्षा। बचे हुए कॉलेजों में फीस तो पूरी मगर न शिक्षक, न कोई पढ़ने की सुविधा। क्यों राज्य दर राज्य सरकारें इतनी नकारा बन चुकी है जो इन कॉलेजों को ठीक नहीं कर सकती, स्कूल तक नहीं चला सकतीं। क्यों कोटा की इन आत्महत्याओं में नब्बे प्रतिशत बिहार और

उत्तर प्रदेश जैसे हिंदी भाषी राज्यों से ही है? दबाव या अपराध माँ–बाप का। जब इंजीनियरिंग की डिग्री में पूछ सिर्फ आइआइटी, एनआइटी की बची है तो बच्चे के कानों पर स्कूल के दिनों से गूंजने लगते हैं ये शब्द। सपनों, महत्वकांक्षाओं, गर्वीले भविष्य से धकेले जाते ये बच्चे पहुंच तो गये कोटा जैसे कोचिंग संस्थानों में, लेकिन क्या उस माहौल में रातों–रात फिट हो जाना इतना आसान है? ये मानवीय आत्माएं हैं, निर्जीव रोबोट नहीं। हर कोशिश के बावजूद हमारें बच्चे हताश, निराश, एकाकीपन के कुएं की तरफ बढ़ते जाते हैं।

आइआइटी की परीक्षा में पिछले दस बरस में दसियों बार अनगिनत परिवर्तन ताबड़तोड़ किए गए हैं। कभी दो चरण कभी तीन, कभी आब्जेक्टिव पर जोर तो कभी 12वीं के नम्बरों पर। शिक्षा व्यवस्था में जितने डॉक्टर उतनी तरह की दवाईयां, आपरेशन, सर्जरी। मंत्री या तो वे हैं जो हॉवर्ड और कैंब्रिज में पढ़े हैं या वे जो जाति, धर्म के आंकड़ों को ही बांच सकते है। आश्चर्य है कि ये दोनों ही पक्ष चुप्पी साधे है। नतीजा– न कोचिंग कम हुई, न दूर–दूर के गाँवों, कस्बों से कोचिंग के मक्का–मदीना की तरफ बढ़ता पलायन। बढ़ती आत्महत्याओं से भी शिक्षा के नियंताओं के चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं। क्योंकि इससे वोटों की फसल पर कोई असर नहीं होगा। गनीमत है कि इन्होंने इन आत्महत्याओं में जाति और धर्म की गिनती नहीं की। इससे भी बुरा पक्ष है देश के इन शीर्ष संस्थानों में पहुंचने वाले छात्रों की प्रतिभा पर प्रश्नचिन्ह। दुनिया भर से मिल रही रिपोर्ट बता रही है कि ये शीर्ष संस्थान लगातार पिछड रहे है कुछ वर्ष पहले एक वैज्ञानिक पत्रकार का कहना था कि आखिर क्या कारण है कि इन शीर्ष संस्थानों में पढ़ रहें बच्चों में कल्पनाशीलता, अन्वेषण और रचनात्मकता निरंतर ह्रास पर है। पिछले वर्ष आइआइटी रूड़की में पहले ही वर्ष में सत्तर छात्रों का फेल होना क्या बताता है? अंग्रेजी का कहर तो है ही, रटंत शिक्षा की सीमाएं भी साफ है। फिर भी इनमें पहुंचने की उतावली या हताशा में आत्महत्याएं?

अध्ययन का उद्देश्य

- वर्तमान शिक्षा की वास्तविकता से लोगों को अवगत कराना।
- वर्तमान शिक्षा की कमियों के प्रति लोगों में जागरुकता उत्पन्न करना।
- शिक्षा की कमियों के कारण होने वाली आत्महत्याओं के प्रति जन आक्रोश जगाना।
- वर्तमान शिक्षा के गुण व अवगणों से लोगों को अवगत कराना।

निष्कर्ष

प्रतिस्पर्धा कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन शिक्षा व्यवस्था में वे बुनियादी परिवर्तन लाने होंगे जो बच्चों को इतना मजबूत बनाएं कि जीवन में किसी एक–दो परीक्षाओं में पास–फेल होना कोई मायने नहीं रखता। डार्विन, आइंस्टीन से लेकर अमिताभ बच्चन, प्रेमचंद, मंटों की वे जीवनियां पढाई जाएं जिससे ये जान सकें कि स्कूल या प्रतियोगिता में कुछ नंबरों के कम–ज्यादा होने से खास फर्क नहीं पड़ता। और बच्चों से ज्यादा जरूरी है उनके मां–बाप, स्कूल के टीचरों की मानसिकता को बदलना कि तुम अपने नकली सपनों की खातिर क्यों इन लाड़लों की कुर्बानी देनें पर तुले हुए हो। दुनिया भर के शिक्षाविद् उस शिक्षा के हिमायती रहे हैं जहां बच्चा मस्ती से पढ़े स्कूल आए, न कि स्कूल और इन कोचिंग संस्थानों की कैद में हताश हो। यूरोप, अमेरिका आदि ने शिक्षा व्यवस्था की इस चूहा दौड़ से बचने के लिए ठोस कदम उठाए हैं और इसका फायदा पूरे समाज को मिल रहा है। लेकिन हमारे यहां तो सामाजिक न्याय और विकास के नाम पर वे बातें जारी है जिन पर 15वीं सदी भी शर्मा जाए।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है, ''कि शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है, हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन की बल बढ़े, बुद्धि और तर्कशक्ति का विकास हों ओर मनुष्य स्वावलम्बी बनें।''

सही अर्थो में हमे उपरोक्त जैसी सच्ची शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी, और वह भी अविलम्ब। क्योंकि ऐसा ना हो कि बहुत देर हो जाय।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अमर उजाला, मेरठ, 12.08.2018, पृ0 8

शर्मा, जी. एल., (2015) ''सामाजिक मुद्दे'' प्रेम रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0–431

अग्रवाल, डा0 अमित कुमार (2013), ''भारतीय सामाजिक समस्यायें'' विवेक प्रकाशन दिल्ली, पृ0–170

पाण्डेय, डा0 राज कुमार (2017), ''शिक्षा तथा समाज'' विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा।

लाल, डा0 रमन गिहारी (2016), "उदायीमान समाज में शिक्षा" लाल बुक डिपो, मेरठ।

पायल, डा0 हेमलता (2014), "शिक्षा और समाज" लोयल बुक डिपो, मेरठ।